दर्शन स्तुति
(पं. दौलतरामजी रचित)

www.JainKosh.org

इस स्तुति में 3 मुख्य बातों का वर्णन किया है

1-7	• सच्चे भगवान का स्वरूप
8-11	• अनादिकालीन दुखों का मूल कारण
12–18	• उन दु:खों को नष्ट करने के अन्तरंग और बहिरंग उपाय

www.JainKosh.org

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।1।।

- अर्थ: हे भगवान ! आप सम्पूर्ण लोकालोक को जानते हुए भी अपने अतीन्द्रिय आनंदरूपी रस में लीन हैं।
- आप अरि अर्थात् मोहनीय कर्मरूपी शत्रु, रज अर्थात् धूल के समान ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म और रहस अर्थात् अंतराय कर्म — इसप्रकार चार घाति कर्मों से सदा रहित हैं - ऐसे जिनेन्द्र भगवान सदा जयवंत रहें।

www.JainKosh.org

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार।।2।।

- अर्थः हे भगवान! आप वीतराग-विज्ञानता के भंडार हैं,
- मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं,
- आप अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य रूप अनंतचतुष्टय से सुशोभित हैं, सम्पन्न हैं,
- आपकी जय हो, जय हो...।

www.JainKosh.org

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ।।3।।

- आप परम / उत्कृष्टतम शांतमुद्रा से सहित हैं, जो भव्य-जीवों को आत्मानुभूति में कारण होती है ।
- भव्यजीवों के तीव्रतम पुण्योदय से और आपके वचनयोग से होनेवाली आपकी दिव्यध्वनि होती है ।
- जिसे सुनकर भव्यजीवों के विभ्रम अर्थात् मोह, संशय आदि नष्ट हो जाते हैं।

www.JainKosh.org

तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक, प्रकटै, विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त।।4।।

- आपके गुणों के चिंतन से अपने और पराये का भेदज्ञान प्रगट होता है और
- सभी प्रकार की आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।
- आप जगत के आभूषण हैं अर्थात् जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं, आपसे जगत की शोभा है।
- आप सभी दोषों से रहित हैं,
- सभी महिमाओं से सम्पन्न हैं और
- सर्वविकल्पों से रहित हैं।

www.JainKosh.org

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभ विभाव-अभाव कीन,स्वाभाविक परिणतिमय अछीन।।५।।

- आप सभी प्रकार के विरुद्ध भावों से रहित अविरुद्ध, शुद्ध हैं,
- चेतन अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप हैं,
- परमात्मपद को प्राप्त हैं, पूर्णतया पवित्र हैं, अनुपम हैं।
- आपने सम्पूर्ण शुभ-अशुभ विकारी भावों का अभाव कर लिया है,
- और कभी भी नष्ट नहीं होनेवाली स्वाभाविक दशा प्रगट की है।

www.JainKosh.org

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत।।६।।

- आप 18 दोषों से रहित हैं,
- सब कुछ सहन करने में धीर हैं,
- अनंत चतुष्टय से सम्पन्न, शोभायमान हैं, गंभीर हैं।
- आप बड़े-बड़े मुनिराज, गणधर आदि द्वारा भी पूज्य हैं ।
- आप नव केवललब्धिरूपी लक्ष्मी के धारक हैं।

www.JainKosh.org

18 दोष
भूख
प्यास
बुढापा
रोग
जन्म
मृत्यु
भय
गर्व
राग
द्वेष
मोह
चिंता
रति
निद्रा
विस्मय
मद
स्वेद
खेद

नव लब्धि –

केवल ज्ञान के साथ प्रगट होने वाले क्षायिक भाव

क्षायिक ज्ञान	क्षायिक दर्शन	क्षायिक सुख	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायिक दान
क्षायिक लाभ	क्षायिक भोग	क्षायिक उपभोग	क्षायिक वीर्य	

www.JainKosh.org

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि।।७।।

- आपके शासन की सेवा करके अर्थात् आपके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर अनंत जीव मोक्ष गए हैं, अभी जा रहे हैं और आगे भी जायेंगे।
- हे भगवान! इस संसाररूपी समुद्र में दुःखरूपी खारा जल भरा हुआ है,
- इससे पार होने के लिए आपको छोड़कर दूसरा कोई भी सहारा नहीं है।

www.JainKosh.org

यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।।८।।

- हे भगवान! मुझे यह भली-भाँति समझ में आ गया है कि मेरी दुःखरूपी बीमारी का इलाज करने के लिए एकमात्र आप ही समर्थ हैं।
- अतः मैं आपकी शरण में आ गया हूँ तथा
- अनादिकाल से जो दुःख भोग रहा हूँ, उन्हें मैं कह रहा हूँ।

www.JainKosh.org

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप,अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।९।।

- मैं स्वयं ही, स्वयं से, स्वयं को भूलकर घूमा हूँ,
- मैंने कर्म के फलस्वरूप पुण्य और पाप को अपनाया है,
- मैंने स्वयं को दूसरे का कर्ता और दूसरों को अपना कर्ता माना है तथा
- पर-पदार्थों को ही इष्ट-अनिष्ट मान रहा हूँ।

www.JainKosh.org

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार,कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार।।१०।।

- जैसे मृग मृगतृष्णावश बालू में जल की कल्पना कर आकुलित होता रहता है;
- वैसे ही मैं भी अज्ञानता को धारणकर आकुलित हो रहा हूँ।
- मैंने शरीर की अवस्थाओं में ही अपनेपन की मान्यता करी और
- अपने आत्मा के पद के सार (ज्ञान-दर्शन) को कभी भी अनुभव नहीं किया।

www.JainKosh.org

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार,भव धर-धर मर्यो अनंत बार।।११।।

- हे जिनेन्द्र भगवान! आपको नहीं पहिचानने के कारण मैंने जो दुःख भोगे हैं, उन सबको आप जानते हैं।
- मैंने अनंतबार तिर्यंचगति, नरकगति, मनुष्यगति और देवगति में जन्म धारण कर-करके मरण के दुःख भोगे हैं।

www.JainKosh.org

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व,चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद।१२।

- हे दयालु जिनेन्द्र भगवान! काल लब्धि के बल से, तीव्र पुण्योदय से आपके दर्शन पाकर मैं अति प्रसन्न हो रहा हूँ,
- मेरा मन शांत हो गया है,
- द्वंद्व अर्थात् संकल्प-विकल्प नष्ट हो गए हैं तथा
- मैंने दुःखों को नष्ट करनेवाले अपने आत्मा का रस चख लिया है ।

www.JainKosh.org

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव।।13।।

- अतः हे भगवान! अब आप ऐसा करें अर्थात् मैं ऐसी भावना करता हूँ, जिससे आपके चरणों का साथ कभी न छूटे।
- हे देव! आपके गुण समूह का तो अंत नहीं है तथा
- संसार से पार उतारने का तो मानो आपका विरद ही है अर्थात् आपके सम्बन्ध में यह जग प्रसिद्ध है कि जो आपके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलता है, वह नियम से संसार पार हो जाता है।

www.JainKosh.org

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।१४।।

- आत्मा का अहित करने वाले विषय और कषाय हैं, अतः मेरी परिणति (भाव) इनमें न जाएँ, मैं इनमें आसक्त न होऊँ।
- हे भगवान! ऐसा कीजिए, ऐसा उपाय बताइए जिससे मैं स्वयं में लीन रहूँ और मैं पूर्ण स्वाधीन बन जाऊँ ।

www.JainKosh.org

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप।।15।।

- हे मुनियों के नाथ भगवान! मेरी और कुछ भी इच्छा नहीं है; एकमात्र यही चाह है कि आप मुझे सम्यक् रत्नत्रयरूपी निधि दीजिए।
- मेरे इस कार्य के प्रति आप ही निमित्त कारण हैं;
- अतः मेरा कल्याण कीजिए, मेरा मोहरूपी संताप नष्ट कीजिए ।

www.JainKosh.org

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।16।।

- जिसप्रकार चंद्रमा स्वयं शीतलता करने में, उष्णता को हरने / नष्ट करने में कारण होता है,
- उसीप्रकार आप भी कुशलता देने में स्वयं सहज ही कारण हैं।
- जैसे अमृत को पीने से रोग स्वयं ही नष्ट हो जाता है
- उसीप्रकार आपके अनुभव से अर्थात् आपके द्वारा बताए गए अपने ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा के अनुभव से संसार नष्ट हो जाता है।

www.JainKosh.org

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय,नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज।17।

- तीन लोक और तीन काल में आपको छोड़कर दूसरा कोई भी सुखदायक अर्थात् वास्तविक सुख का मार्ग बतानेवाला नहीं है।
- मेरे मन में आज यह निश्चय हो गया है कि इस दुःखरूपी समुद्र से पार होने के लिए एकमात्र आप ही जहाज के समान हैं।

www.JainKosh.org

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
दौल स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार।।१८।।

- आपके गुण समूहरूपी मणिओं को गिनने में गणधरदेव भी पार नहीं पाते,
- तब फिर अल्पबुद्धिवाला मैं (दौलतराम) उन्हें कैसे कह सकता हूँ!!
- अतः मैं तो मन, वचन, कायरूप तीनों योगों को सँभालकर मात्र नमस्कार करता हूँ ।

www.JainKosh.org